

सूर्य
प्रकाशन
मंदिर,
बीकानेर

उस दुनिया
की
सैर के बाद

सांवर दइया

प्रकाशक
नेगचार प्रकाशन
3च-14, पवनपुरी, बीकानेर-334 003
मुख्य वितरक
सूर्य प्रकाशन मन्दिर
नेहरू मार्ग (दाऊजी रोड़)
बीकानेर 334 005
आवरण परिकल्पना
लोकरुचि
संस्करण. 1995
मूल्य: रुपये पिचहतर मात्र
मुद्रक
खुशाल कम्प्यूटर एण्ड प्रिन्टर्स
नत्थूसर गेट के बाहर,
बीकानेर 334 005

US DUNIYA KEE SAIR KE BAD
Poetry by SANWAR DAIYA
Price Rs. 75/-
Published By
NEGCHAR PRAKASHAN
3 CH-14, PAWAN PURI,
BIKANER-334 003

अनुक्रम

लील न लें

किसी धमाके के साथ
हडकंप मचाते हुए
खलनायक की तरह मंच पर
उपस्थित नहीं होता पतझड

दबे पाँव आता है -
लीलता है हरापन
    धीरे-धीरे

और हमे खबर तक नहीं होती
झरने नहीं लगते जब तक
एक-एक कर शाख से पत्ते
और देखते-ही-देखते
एक दिन
पूरा पेड हो जाता है नंगा

मित्रो !
अब बहुत जरूरी हो गया है
हर कदम पर सावधान रहना
दुनिया के किसी भी कोने से चलकर

आने वाले हितैषी
सिर सहलाकर
दो मीठे बोलो के बहाने
हमारे घर मे बनाकर अपना घर
कहीं लील न ले सारा हरापन ।

हाँ वही सुख

छिप नहीं सकता वह सुख
तृप्ति बन तिर-तिर
चेहरे पर घिर-घिर
आता है फिर-फिर
लुनाई लुटाता
अंगों में आलोक भरता
देह मे देवत्व जगाता

वही
हाँ, वही सुख
जो हरा करता ।

यह देह ही

मेरी देह
तलाशती फिरती है तेरी देह
जैसे सूर्य के पीछे धरती
धरती के पीछे चन्द्रमा

मेरी देह
व्याकुल तेरी देह के लिए
जैसे सागर की लहरें
पूनम के चाँद के लिए
या तरसता है जैसे
    मोर बादल को
    सीप स्वाति बूँद को
यह देह ही है
जो जगाती है देवत्व भाव मुझमे
    तेरी देह के प्रति

दुनियावालो !
मेरे पतन की पहली देहरी है देह
मेरे उत्थान का चरम शिखर भी इसे ही जानो।

नए साल की सुबह : एक चित्र

इकतीस दिसम्बर की रात
की जमी हुई झील को पार कर
पूर्व की देहरी
की ओर जा रहे सूरज संग चली
नव वर्ष की भोर-दुल्हन
देहरी तक पहुँचते-पहुँचते
ठर कर अचेत हो गई

लगा है सूरज
अपनी देह से उसकी देह गरमाने

लो,
धीरे-धीरे छँटने लगा कोहरा
फूटने लगा हल्का-हल्का उजास
सुगबुगाहट-सी हुई देख देह मे

सतोष की साँस ली सूरज ने
खिल-खिल उठे लोग
भोर-दुल्हन के दर्शन कर

छत-आँगन और चौक मे
खेलने लगे बच्चे
खिलखिलाती धूप में
खिलखिलाने लगे बच्चे !

सपना सँजो रहे

नहीं
कुछ फर्क नहीं पडेगा
यदि ये शिलाएँ न लगे राम मदिर मे

नहीं
कुछ फर्क नहीं पडेगा
यदि ये पत्थर न लगे बाबरी मस्जिद मे

लाओ,
इधर लाओ
ये शिलाएँ
ये पत्थर
यह सीमेंट
यह चूना
यह गारा
ये सब इधर लाओ

यहाँ हम
हर आदमी के लिए
घर बनाने का सपना सँजो रहे हैं
आओ
इधर आओ

हमारा सपना सच बनाने में जुट जाओ
यह आग्रह गलत तो नहीं है ना ?
चुप क्यों हो ?
कुछ तो बोलो
इधर तो आओ ।

अपने ही रचे को

पहली बरसात के साथ ही
घरो से निकल पडते हैं बच्चे
रचने रेत के घर

घर बनाकर
घर-घर खेलते हुए
खेल ही खेल मे
मिटा देते हैं घर

अपने ही हाथो
अपने ही रचे को मिटाते हुए
उन्हे नहीं लगता डर

सुनो ईश्वर !
सृष्टि को सिरज-सिरज
तुम जो करते रहते हो सहार
मने रहते हो -
बच्चो की ही तरह निर्लिप्त-निर्विकार ?

रचता हुआ मिटता

जितना रचना है
उतना मिटना भी है शायद

यह अलग बात है
रचता हुआ मिटता
है नहीं जो दिखता

दिखता जैसे अँखुआ
बनता लकदक पेड़
लेकिन बीज फिर नहीं रह जाता

कुछ मिटना ही
कुछ रचना है !

रचा तो रहा

मैं न सही
मेरी जगह
मेरा रचा तो रहा

चलो अच्छा है
इसी बहाने
मैं कुछ बचा तो रहा ।

सुनो माँ !

पहले मैं एक सपना था
जिसे सँजोया तुमने
सांसो से साधा

दुनिया भर का जहर पीकर
बूँद-बूँद अमृत पिलाया
जुडा रहा जब तक गर्भनाल से मैं

दुनिया मे आते ही
मेरे होठो की हरकत के साथ ही
उमड-उमड आया तुम्हारी
छातियों मे हिलोरें लेता क्षीर सागर

फिर मेरे सामने खुली जो दुनिया उसमे
गर्मी ऐसी कि चमडी झुलसा दे
सर्दी ऐसी कि रक्त जमा दे
बदलती ऋतुओं के साथ
आँधी-ओले भी दिखाते अपना असर

लेकिन
न जाने कितने-कितने घातो-प्रतिघातो से
बचाकर अक्षुण्ण ही रखा मुझे
तुम्हारी छातियो की छतनारी छाँव ने !

यह जो बच रहा है

आँधी ही नहीं
आग भी बना समय

इतना कुछ उड जाने पर भी
इतना कुछ जाने पर भी

इतना-सा कुछ
यह जो बच रहा है
सिर्फ़ इसीलिए
रचना मे इतना ही सच रहा है !

सच बता......

कितना अच्छा था वह दिन
भले ही अनजाने में लिखे थे
और अक्षर भी ढाई थे
लेकिन उनमें समाई दिखती थी
पूरी दुनिया

और आज
कितना स-तर्क होकर
रच रहा हूँ पोथे पर पोथे
झलकता तक नहीं जिसमे
मन का कोई कोना

सच बता यार !
ऐसे मे क्या जरूरी है मेरा कवि होना ?

तब और अब

तब
मस्तमौला मन की मिल्कियात थे
ढाई आखर
जिनकी खनक सुन
खिचे आते लोग
जैसे पूनम को आता सागर मे ज्वार
मुट्ठियों में होते मोती
तह तक आते खगाल ।

अब
बुद्धि के तरकश मे तर्क के तीर लिए
योद्धा बने खडे
भेद रहे हैं दूसरो की दीवारे
ढहाकर उनके दुर्ग जहाँ-तहाँ
बना रहे अपने मठ यहाँ-वहाँ
फिर भी हैं कगाल ।

हरेपन का इतिहास

सूखा भीतर तक
तभी तो पीला हुआ

पीला दिखता है
लेकिन पीला था नहीं

और आज भी
पीलेपन मे इसके
हरेपन का इतिहास है !

हो नहीं सकती

दिखती हो बेशक सीधी
सीधी नहीं होती लेकिन सडक कोई

कदम-कदम पर होते हैं
छोटे-छोटे ही सही
उतार-चढाव
दृश्य-अदृश्य गड्ढे
हल्की-सी बाँक कोई
    रख दी जाती है
या रह भी जाए तो क्या

चलने वाला जानता है
सीधी हो नहीं सकती सडक कोई
आदमी ने जो बनाया है इसे !

हरिया उठता है

भूल-से ही सही
सूख रही किसी शाख पर ठूँठ की
फूट आए जो कोपल कहीं कोई

ठूँठ हो रहा
ठूँठ फिर ठूँठ नहीं रह जाता
हरिया उठता है मन-ही-मन
हरियाता है जैसे
भरा-पूरा गाछ कोई ।

खरोंचें कभी पोंछी नहीं जाती

बच्चे स्लेट पर कुछ लिखकर
पानी से पोंछ देते हैं

एक-सा सुख है उनके लिए
लिख-लिखकर पोछना
पोछ-पोछ कर लिखना

हम अपनी लिखी इबारतो को
पोछ ही नहीं पाते
दरअसल हम लिखते कहाँ
        खरोचते हैं
और खरोंचें कभी पोछी नहीं जाती !

ठूँठ जो ठहरा

हर आती रुत लाई
अपने संग रंग नए
पर यह जस-का-तस रहा
आजू-बाजू कहीं
कोपलें फूटीं
कलियाँ चटकीं
फूल खिले

यहाँ-वहाँ
भौंरे गुनगुनाए
हर तरफ
हवाएँ बहकीं

पर
टस-से-मस न हुआ
यह मेरा मन
ठूँठ जो ठहरा !

हर छुअन के बाद

बरसात में नहाई
हरी पत्तियाँ
सोनल धूप की छुअन जो मिली
दिप्-दिप् कर खिल उठीं

कुछ और भरा
उनके भीतर हरा
हर छुअन के बाद
फिर-फिर भरा
कुछ और हरा

देखो
इनके दम से
अब हरा भरा है पेड़ पूरा !

अपना–अपना वर्तमान

पीले पत्ते-सा चेहरा लिए
हँसा वह आदमी
हँसी लेकिन उसकी
भर न सकी कहीं पुलक कोई
हताशाओ का इतिहास ओढे वर्तमान था वहाँ
टिमटिमा रहे थे कहीं दूर जो दीप एक-दो
    लो, अब तो उनमें भी न रही लौ!

खिले फूल-सा चेहरा लिए
दूधिया दाँतों की छटा दिखाती
खिलखिलाई जो मुनिया
भर गया हर तरफ आलोक मनभावन
खुल-खुल गए निश्छलता के पृष्ठ-दर-पृष्ठ
आशाओ-उमगो का दुशाला ओढे वर्तमान था वहाँ
जगमगा रहे थे दूर कहीं दीप असख्य!

वही नहीं लेकिन

एक ही रक्त-माँस-मज्जा से
बने हैं मैं और तुम
चूँघा है एक ही माँ के स्तनो से दूध

गोद वही
आँगन वही
छत वही
वही नहीं लेकिन मैं और तुम

यदि
मै तुम होता
तो तुम क्या होते
या
तुम मैं होते
तो फिर मैं क्या होता ?

मैं, मै हूँ
तुम, तुम हो
अलग-अलग है पहचान हमारी
और यही है होना हमारा !

गुनगुनी धूप-सी

पाला खाए पीले पात लिए
जमे हुए खड़े हैं
कोहरा ओढ़े पेड़

ठिठुरता पड़ा कहीं अकेला मैं
हो उठा ताजा दम
मन-छत पर छितराई जैसे ही
गुनगुनी धूप-सी स्मृति तुम्हारी ।

उभरने लगा है

दिसम्बरी अदीतवार
कोहरे मे डूबा समूचा शहर
मैं तुम्हारी याद में

उधर कोहरे को चीर
आहिस्ता-आहिस्ता तैरती
आ रही है सोनल धूप
इधर मन के तालाब मे
महकने लगा है कँवल
आँखो के आगे उभरने लगा है चाँद ।

मेरे होने से

समझाते हैं वे
जनेऊ-तिलक होंगे अर्थयुक्त तभी
जब करूँ नियमित त्रिकाल-सध्या

फरमाते हैं वे
अजान-रमजान फलेगे तभी
जब रहूँ बन पाँच वक्त का पक्का नमाजी

कहते हैं वे
कघा-कडा-कच्छा-कृपाण-केश का है
कोई अर्थ तभी
जब कंठ मे रखूँ गुरु-ग्रन्थ साहब

सुनाते हैं वे
सेवा शब्द सार्थक तभी
जब लूँ यीशू की शरण

जहरभरी कसीदाकारी वाले लबादे ओढे बिना
क्यो नहीं है कोई पहचान मेरी ?

मनु-पुत्र के नाते
जब-जब जुडना चाहता हूँ तुमसे
क्यों धू-धू धधकने लगता है
दावानल बन अविश्वास

मेरे होने के लिए
क्यो जरूरी है
उनके दिए तगमें टाँके फिरना ?
ज्ञानियो !
इतना तो बताओ
मेरा होना क्यों नहीं है
मेरे होने से ?

हाँ, वे ही शब्द

चौफेर पसरे अँधेरे के बीच
    एक किरण उजास
यहाँ से वहाँ फैली बर्फ पिघलाने
    मुट्ठी भर गरमास
घोंसले में पाँखें समेटे बैठी ठिठुरती चिड़िया के डैनों के लिए
    थोड़ी-सी सुगबुगाहट
बियाबान में पछाड़े खाते सन्नाटे को पार करते समय
    किसी परिचित की पद-आहट
थाली और बिस्तर के बाहर
डबडबाई आँखों के आँसुओं की पहचान

झूठ के धधकते कीचड़ मे
    कमल-सा तैरता सच

बस प्रभु !
वे ही
हाँ, वे ही शब्द चाहिए मुझे
जिनसे अपनी यह वांछा सकूँ रच !

और खिल उठेंगे

कितना अच्छा है
कोई परवाह नहीं कीचड में सन जाने की

पानी से हुआ कीचड
पानी से धुल जाएगा
जानते हैं
पानी मे पानी के सग फिसलते बच्चे

पानी मे खिल उठते हैं बच्चे
धुलकर खिल गया है जैसे नीला-नीला आकाश
धुलकर खिल उठे हैं जैसे पेड के हरे-हरे पात

धुलकर और खिल उठेगे
बच्चो के धुले-धुलाए मन !

चलने का अर्थ

सुनो यार !
जरा ठहरें
ऐसी भी क्या जिद चलने की
चलने वालों को
जरा रुकना भी चाहिए
थोडा सुस्ताना भी चाहिए

तपती रेत की छाती पर पाँव रख
यह समंदर पार करते-करते
तांबिया चुकी है देह

रास्ते मे आया है जो पेड
पेड के पास कुटिया
कुटिया में बुढिया
बुढिया के पास मटका
मटके मे पानी
इनका कोई तो अर्थ होगा
(नहीं है क्या ज्ञानी ?)

आओ,
इस पेड की छाँव तले ठहरे
कुटिया मे सुस्ताएँ
बुढिया के पास बैठे

थोडा बतियाएँ
मटके का ठंडा पानी पिएँ
ऐसे कुछ ताजा हो ले
और फिर आगे चले

कुछ एक-सुस्ता कर चलना ही तो
चलने का अर्थ है।

पोती की स्मृति में

खैर,
वह तो जल-जला गई
छोड़ो उसकी कहानी
वैसे खत्म नहीं होती कहानी

जल-जला जाने के बाद भी
पीछे रह जाते हैं
दीवारो पर कुछ काले धब्बे
    कुछ फर्श पर भी
न सुनना चाहे तब भी उभरती है हवा में
    कुछ चीत्कारें
    कुछ चीखे
    बचाओ-बचाओ की असहाय अटूट पुकार
न सुनी जाने पर जो
    टूट जाती है
    बेहद ठंडी रातो के साँय-साँय करते
सूने सन्नाटे मे
मेरी नींदों को जलाकर
आज भी सामने आ खडी होती हो
तो इतना बताओ सुन्नू
इस जलजले मे कहाँ ढूँढे
तुम्हारे जल-जला जाने के कारण
    बताये नहीं जो तुमने ही !
(जली अथवा जलाई पोती की स्मृति मे)

स्मृति गंध-सूत्र

बीच में हैं तो हुआ करें
पहाड या नदी या खंदक
या और भी कुछ-कोई

दुनिया का छोटी या बडी होना
अर्थ रखते हुए भी है अर्थहीन
हमारे लिए

इस छोर मै
उस छोर तुम
और साँस ले रहे सटे-सटे !

साथ-साथ बाँधे है हमें जकडकर
स्मृति गंध-सूत्र ।

हवा

कुछ दिन पहले
तुम बाँध रहे थे उसकी हवा
आज इसकी बांधने में लगे हो
हो सकता है--
कल किसी तीसरे की बाँधने निकल पडो

और तीसरे तक पहुँचते-पहुँचते
रास्ते मे ही बदल जाए हवा
तो चौथे की तरफ चल पड़ना
शर्म की बात तो है नहीं

हवा का क्या
हवा तो बदलती ही रहती है।

बदलना ही धर्म है हवा का
जानते हो तुम
तुम्हें हम

तुम्हे कोई दोष नहीं दोस्त।
हवा के समानधर्मा जो हो तुम।

मेरी रची दुनिया मुझसे

बताओ मैं ऐसी क्यो हूँ ?
मेरी रची दुनिया पूछती है मुझसे

दे सकता हूँ मैं चोर-उत्तर :
जैसी है दुनिया, वैसी ही तो रची है

लेकिन नहीं
देखी दुनिया को जब रचा मैंने
कुछ जुडा उसमे मेरा
जो और कहीं नहीं है
इसीलिए मेरा है

मेरी है दुनिया मेरे जैसी !
अब कोई सवाल नहीं पूछती
मेरी रची दुनिया मुझसे !

जीवन का सच

गगनचुम्बी इमारत थी जो
खडी है वही खण्डहर बन

अब न हँसी-ठहाके
न बातो का शोर
न फुसफुसाहटे
भाँय-भाँय करता है सिर्फ सन्नाटा

लकदक हरियल गाछ था जो
खडा है वही ठूँठ बना
अब न झूलने-खेलने आते हैं बच्चे
न चहचहाते हैं पछी
न विश्राम लेते पथी
अकेलेपन की ऊब है चौतरफ

संध्यावेला मे
अकेला नहीं गया हूँ मैं
साथ है मेरे जीवन का सच
यह खण्डहर
यह ठूँठ
यह भाँय-भाँय करता सन्नाटा
और यह अकेलेपन की ऊब !

पहचान खो गई

वे फूलो से लदे
वे रथ पर चढे
लेकर अपने पीछे
लाखो कठो से निकलता जयघोष
वे आगे बढे

आगे भी अगवानी मे तैयार
अतीत के गौरव की चकाचौंध मे
चुंधियायी भीड
वही उन्माद भरा जयघोष अटूट
पीछे छूटती गईं
गली कोनों मे
चीखे-चीत्कारे
आग की लपटे
क्षत-विक्षत लाशे
धुआं धुआ .धुआ
साथियो !
शताब्दी का सबसे संकट भरा
समय है यही
जहाँ हत्यारो की पहचान खो गई है !

मजाक बहुत महँगा पड़ता है

सच
कभी-कभी मजाक बहुत महँगा पडता है

चुपचाप लेटी थी नदी
मजाक ही मजाक मे
ढीठ हवाओं ने छेडा उसे

मजाक-ही-मजाक मे
बदमाश बादलो ने कसकर मारे छींटे

मजाक-ही-मजाक मे
उद्दण्ड धाराओ ने उकसाया

आपे से बाहर हुई नदी
बाँधे बँध नहीं रही अब

खतरे के किसी भी निशान का
कोई खतरा नहीं इसे

लेकिन
बुरी तरह खतरे मे है
मीलो-मीलों हर कोई

सच
कभी-कभी मजाक बहुत महँगा पडता है !

ऐसा तो दम

उद्दण्ड - उच्छृंखला हो
उफन रही नदी को
बाँहो मे भींच
पूरी ताकत लगा
कर डाले बेदम
ऐसा तो दम
लगा नहीं इन किनारो मे।

जीने के लिए

जीने के लिए
ऐसे भी तो जी सकते है यार-
सुबह जल्दी उठे
निबटें-नहाएँ
चाय के घूँट और बीडी/सिगरेट के कश खींचे
उड़ती-सी नजर डाले अखबार पर
कहाँ-कितने-कैसे मरे
कल तो सौ थे, आज साठ हैं
चलो अच्छा है, चालीस कम मरे !

ऐसे मे बज जाए नौ-साढे-नौ
अब जल्दी-जल्दी दो चार चपातियाँ ठूँसे
फिर चल पडे
ले छकड़ा साइकिल इक्कीसवीं सदी की अगवानी करने
कारो-स्कूटरों-टैम्पों की भीड चीरते
लडखडाते-हाँफते सुरक्षित पहुँचे दफ्तर
अटकी-भटकी जरूरी फाइल हो
कोई तो निबटाएँ
नहीं तो फिर कोई जल्दी नहीं है
इतने दिन पडी रही तो एक दिन और सही

अब बीडी/सिगरेट फूँके
उबासी खाएँ

चाय का जुगाड़ करे
जो नहीं बैठा है बीच मे
उसकी बीवी को लेकर कुछ किस्से बखाने
ऐसे मे पाँच तो बजेगी ही बजेगी

जेब और पहली तारीख के बीच
टाँग अड़ाए खड़ा
एक दिन और धड़ाम् से गिरा देख खुश हों

उठाकर अपना वही छकड़ा
ढलान से उतरे, मकान मे पहुँचे
(घर तो रहे ही कहाँ !)
बुड्ढ़े-बक्से की बाँहो मे समाएँ
फिर वही थाली
फिर वही बिस्तर
बीच-बीच मे बजता खाली कनस्तर

बस, बहुत हुआ
अब चादर ओढ़
मुँह फेर कर सो जाएँ
और ऐसे ही
किसी एक दिन चुपचाप मर जाएँ !

कोई जरूरी नहीं है जीने के लिए
'मुगेरीलाल' की तरह हसीन सपने देखना
'फटीचर' की तरह इमोशनल होना !

सिरफिरे हैं वे जो कहते हैं-
जीने के लिए सीने मे
जरूरी है किसी आग का होना !

नदी के नाम

पहाडो से
टकराती
बल खाती
इठलाती
चली आ रही नदी
कभी मद
कभी द्रुत गति से
हर किसी की प्यास बुझाती

मैं भी खडा था किनारे
लेकिन
मुझे तो
पानी की एक भी बूँद
न दी
मैं किस मुँह से कहूँ
तुम नदी हो !

पत्थर जानता है

कोई आदमी अगर
पत्थर पर फेकता है पत्थर

पत्थर पलटकर नहीं मारता पत्थर

पत्थर जानता है
पत्थर से देव होने का इतिहास
मालीपन्ने-सिदूर
मनौतियाँ-चुनौतियाँ
पूरी होती कामनाएँ
श्रद्धा का उमडता सैलाब

चरणो मे शीश झुका
नमन करने वाले किसी भी आदमी को
भूला नहीं है पत्थर !

पानी ही न रहा

हाँ ऽ ऽ
वे दिन भी
क्या दिन थे सुख भरे
सूखकर झर चुके जो
पीले पत्तों की तरह

फिर भी अक्षय है
सौंधी-सौंधी स्मृतियों का सिलसिला

पास बैठने पर तुम्हारे
अंगीठी की तरह
दहकने लगती थी देह
नथूनों से निकलती गर्म साँसे
तपते होठो की मुहर लगाता था जब
गर्दन और कंधों के बीच कहीं
काँसी की बजती थाली-सी
झनझना उठती थी समूची सगमरमरी देह तुम्हारी

और दोनो तरफ
नस-नस मे तनतनाने लगता था पानी

लेकिन आज
साँसें वही
होठ वही
गर्दन-कधा वही
वही मैं और तुम
लेकिन स्पन्दन नहीं
स्फुरण नहीं

सुबह-शाम की जरूरतों के सोख्तो ने
सोख लिया सारा पानी

पानी ही न रहा जब
क्या करे कोई इस जीवन-मोती का ?

खबर करना मुझे

माँ रसोई में व्यस्त है
अपनी सम्पूर्ण झुँझलाहट और खीज के साथ
सब्जी भून रही है
और भुनभुना रही है
जिस दिन यह
गुनगुनाते हुए खाना परोसे
खबर करना मुझे

पिता दफ्तर मे व्यस्त हैं
अपनी सम्पूर्ण ऊब और उदासी के साथ
फाइल के पन्ने फडफडा रहे हैं
वे निरतर बडबड़ा रहे हैं
जिस दिन यह
प्रसन्नचित्त तल्लीन दिखे
खबर करना मुझे

भैया अपनी डिग्रियो की
फोटो स्टेट करवाने मे व्यस्त है
अपनी सम्पूर्ण हताशाओ के बीच
फिर भी जन्मी आशा के साथ
साक्षात्कार देने उत्साह के साथ जाते हैं
शाम को पिटे-पिटे-से लौट आते हैं
जिस दिन यह
उमंग के आलोक से भरा लौटे

खबर करना मुझे

बहन अपने ही भीतर व्यस्त है
अपनी सम्पूर्ण चुप्पी और द्वन्द्व के साथ
याद आ रही है बस कर उजड़ी सहेलियाँ
सुलझा नहीं पा रही है सिन्दूर की पहेलियाँ
जिस दिन यह
चहक कर घर का सपना सच कर ले
खबर करना मुझे

पूरा-का-पूरा घर
अपनी-अपनी दुनिया मे व्यस्त है
इसीलिए
घर का बच्चा भी कहीं व्यस्त है
और अपने मे मस्त है

यह बच्चा
कल जब बडा होगा
अपनी माँ या अपने पिता या अपने भैया
या अपनी बहन की तरह व्यस्त होगा
क्या तब भी मस्त होगा ?
जिस दिन यह
फिर वैसा ही मस्त लगे
खबर करना मुझे !

ऊपर उठने पर ही

पहाड पर चढने पर ही
पता चलता है कितना दबा-घुटा
और पिचका-पिचका-सा है शहर

ऊपर उठने पर ही है
खुलेपन और ताजी हवा का स्पर्श
रोम-रोम मे पुलक

गैर जरूरी सामान
नहीं साथ कुछ अपने भी
पग-पग पर खुला रहे पृष्ठ
अपरिग्रह की पुस्तक के

यहाँ-वहाँ पत्थरो के बीच
हल्की-हल्की-सी घास
पत्ते त्याग रहे पेड

मर्मर-ध्वनि से
उपजता मन मे स्वर
ऊपर
और ऊपर जाना है अभी !

आँख के तिल में

दुनिया कितनी बडी है !
पर
बहुत बडी दुनिया
है नहीं मेरी

धरती-गगन
हवा-पानी-अगन
के सग-संग पसरकर भी
कण ही हूँ
उडता-फिरता
आ गिरता हूँ तुम्हारी आँख मे
जहाँ है तिल

तुम्हारी आँख के तिल मे
समाकर जाना मैंने
यहीं है सारी दुनिया मेरी !

खिंच आता है

अँधेरा हो भी तो
टिक नहीं सकेगा
न रह सकेगा
रग बदलकर ही

दिप्-दिप् करती लौ का-सा
उजास जो है
तुम्हारे अंग-अग में

यह कौंध ही तो
रास्ता दिखाती है
फिर उधर ही खिंच आता है
मन-पतगा मेरा !

तिल-तिल छीज रहा

अपने उन्माद मे डूबी
बाँसो उछलती लहरो को
    मचल-मचल जाते देख

और भी सिहर-सिहर उठता हूँ
पहले से ही भयभीत मैं
कहाँ तक टिक पाऊँगा
नित्य तिल-तिल छीज रहा
नोक-भर टिका-जुडा पुराना किनारा ।

बाँसो उछलती लहरो को देख
सिहर-सिहर उठता हूँ मैं ।

घर बनाया

ये पहाड़ काटे हमने
कुछ जगह समतल बनाई
फीते से नापा
कुछ वर्ग फुट जगह अपने नाम लिखी

दीवारें उठाईं
छतें डलवाईं
रंग-रोगन किया
अपने नाम की तख्ती
दरवाजे पर लटकाई
और खुश हुए
चलो, हमारा भी मकान बना

पर
तुम्हीं हो जिसने
इसे घर बनाया।

बदलती संज्ञा के देखते

रोज ही
जल-जला जाती हैं लड़कियाँ
बाहर की दुनिया
रहती है जस-की-तस
क्रिया नहीं
संज्ञा भर बदलती है बस

जलजला आता नहीं कहीं कोई
जल-जला आती है चुपचाप
जल-जला जाना है जिसे एक-न-एक दिन
यहाँ नहीं तो वहाँ सही
वहाँ नहीं तो कहीं और सही

दुनिया को इसी तरह चलते रहना है
लड़कियों को इसी तरह जलते रहना है
एक ही क्रिया के साथ
बदलती संज्ञा को देखते रहना है !

आई है

पहाड़ों का सीना चीर
रास्ते के हर पत्थर को
ठोकर मार
यहाँ तक
जब चली आई है नदी

तो अब क्यो न
हमीं आगे बढकर
बाँहो मे भींच ले इसे
हमीं से मिलने तो आई है यह !

होगा नही

सूखता है पानी
हो जाता है
हरा पत्ता पीला

अब चाहे जितना दे पानी
होगा नहीं
पीला पत्ता फिर से हरा ।

अपना रास्ता

अपनी-अपनी साइकिल पर
अपना-अपना बस्ता लिए
जा रही है लड़कियाँ

घर से-स्कूल से कॉलेज
जाने वाली सड़कों पर
जा रही है लड़कियाँ

भारी है बस्ता
लेकिन इतना भी भारी नहीं
कि बोझ बने
बोझ बने है लेकिन हमीं
नहीं चाहते
आगे निकले लड़की कोई
घर की देहरी लाँघ

दृष्टि ही नहीं
मान्यताओं की सांकलें भी
डालते हैं आगे बढते पैरो में

लेकिन
रोके से रुक नही सकते वे पाँव
जो पहचान लेते हैं अपना रास्ता ।

हे राम !

प्रार्थना से पूर्व
शिष्य के रूप मे
हत्यारा आ खडा हुआ सामने
जैसे हमारे बीच
अब भी रहता है भेडिया
ओढकर गाय की खाल

प्रणाम की मुद्रा मे जुडे हाथ
हाथो मे तमचा
तमचे मे गोलियाँ
गोलिया सीने के आर-पार

धाँय-धाँय-धाँय
के बीच अक्षय वाणी
हे राम !

आज भी होती है प्रार्थना
आज भी चलती है गोलियाँ
लेकिन प्रणाम की मुद्रा मे जुडते नहीं हाथ
कहीं भी
किसी भी वक्त
आ धमकता है भेडिया
और छोड जाता है खून के निशान

फिर इकट्ठी होती है भीड
सूखी सवेदना के शब्द -
हे राम !

तल में रखे हैं मोती

चालाक लोगो ने
वहाँ भी फैला दिया डर
यह लवणाकर है
यदि इसकी तह मे जाओगे
सिर्फ नमक पाओगे
खारेपन से खेलना ठीक नहीं !
तट पर रहो
भाग्य मे जो लिखा है
यहीं मिल जायेगा
लहर आयेगी
कुछ न कुछ दे जायेगी ।

सागर-तट पर खडे लोग
सुनते रहे चालाक लोगो की कूक्तियाँ
मेरे भीतर कौंधा-
रत्नाकर !

मैं बोला -
तल तक जाऊँगा
मोती लाऊँगा !
सुनकर चौंके चालाक लोग
बोले- गहराई मे जाना खतरा है
किनारा सम्भावनाओ से भरा है
लहर को आने दो ।

लहर आई
अपने साथ लाई
शख, सीपियाँ और घोघे ।

झपट पडे लोग
झपटने वाले फिर झपटे
नहीं हो सकता यह लक्ष्य मेरा
मेरा ही क्या
किसी का नहीं हो सकता
जो सागर तक आए
और उपलब्धि के नाम पर
शख-सीपियाँ-घोघे ले जाए

बस, यही तो होगा
न रहेगा अस्तित्व
न सही
हाथ मे मोती न होना
घोघे होने से बेहतर है

मैं सागर मे गोता लगाऊँगा
तल तक जाऊँगा
लौटूँगा तो मोती लाऊँगा
न लौट सकूँ तो
रोना नहीं साथियो !
तुम भी आना
(मेरी तलाश मे नहीं)
सागर मे गोता लगाना
तल तक जाना, तल मे है मोतियो का खजाना !

विलोम रति

खन् से आ गिरीं
कलाई मे चूडियाँ
और हाथो मे थे
निश्चय ही श्रीफल

एक अधोमुखी कमल
कमल-नाल पर खुलता गया
    आहिस्ता-आहिस्ता
पखुडियो का सिकुडना
    आहिस्ता-आहिस्ता
फिर खुलना
    आहिस्ता-आहिस्ता
पराग का झरना
    आहिस्ता-आहिस्ता

गुत्थमगुत्था साँसो के बीच
खिलखिला रही थी सुगन्ध !

विश्वास

अकुलाई आँखे
स्तब्ध चेहरे
कान . आकाशवाणी प्रसारण पर
कलेजे बेधती शोक धुन

सत्य स्वीकारने को
तैयार नहीं साँसे
हुआ है
फिर भी यही कहते लोग -
यह नहीं हो सकता ।

हुए को नकारते लोगों का
अटूट विश्वास
अटूट विश्वास रखने वालो -
किस मुँह से कहूँ तुम्हें
कि कहीं धज्जी-धज्जी कर
उडा दिया गया है विश्वास ।

सुबह के सगुन

सूरज दे गया
दरवाजे पर दस्तक
खिडकी से आकर गिरा
आँगन में अखबार

हत्याएँ
आगजनी
बम विस्फोट
अपहरण-बलात्कार

ये तो है
सुबह के सगुन

बीतने को बाकी
पडा है अभी तो सामने
पहाड-सा दिन.....
पहाड-सी रात. ...

चहकती-फुदकती चिड़िया

आज सुबह
पेड की डाल पर
फिर चहकीं चिडियाँ
सुना मैंने

पेड की
नगी डालो पर
फुदक रही थीं चिडियाँ
देखा मैंने

खाली कनस्तर
ठण्डा चूल्हा
प्रश्नचिह्न बनीं आँखें
मन को छीलने वाली
चुप्पी में गूँजती
अनिवार्य आवश्यकताओं की सूची

बुझा है मन मेरा
पेड नहीं है हरा
फिर भी
चहक-फुदक रही हैं-
    चिडियाँ
खुद देख समझ कर
बच्चो को दिखलाता हूँ-
देखो, कैसे फुदक रही हैं चिडियाँ !
देखो, कैसे चहक रही हैं चिडियाँ !

अपने ही नाम

मेरे बाहर फैली एक दुनिया असीम
जितनी भी है यहाँ
सुगन्ध-दुर्गन्ध
जितना भी है
उजाला-अँधेरा
आकाश-हवा-पक्षी
नदी-झरने
और भी न जाने क्या-क्या
और भी न जाने कितना-कुछ

उसे अपने भीतर समेटूँ
रचाऊँ
पचाऊँ
इस असीम दुनिया को
अपनी भीतरी दुनिया मे बसाऊँ
और
जो कुछ है भीतर
सारा का सारा उलीच दूँ बाहर
और बन जाए
यह धरती मेरा घर

पीडा मेरी
न रहे सिर्फ मेरी

इस बार

एक बार नहीं
कई बार हुआ है यह
कि जब-जब भी हम
अन्तिम निर्णय लेने के क्षणों मे होते हैं
तुम आ पहुँचे हो
आत्म-समर्पण का
कोई न कोई नया रूप लेकर ।

कभी तुम्हारे मुँह में घास होती है
कभी हमे ललचाने के लिए
सुविधाओ की टॉफियाँ
कभी गर्म गोश्त की नुमाइश
और कभी वातानुकूलित आवासो के नक्शे !

तिल-तिल कर बटोरी गयी आग
तुम्हारे समर्पण का शिकार बन
फिर बिखर जाती है
आसानी से न सहेजे जा सकने वाले
पारे की तरह ।

अपनी सफलताएँ देख हर्षाने वालो !
आग सहेजने-बटोरने की प्रक्रिया

भीतर तक छिलता रहा

न जाने कितनी उमंगे लेकर
पहरों बतियाने की सोच
आया था मैं द्वार तिहारे

मिले, मुस्कुराये, बैठे
पर बतियाये नहीं

जितने पल बीते
    सब रीते
रीते-रीते वे पल
दे सके कोई हल ?

जब तक रहा
भीतर तक छिलता रहा
तुम्हारी चुप्पी के चाकू से ।

हिनहिनाता घोड़ा

यह एकान्त
यह कमरा
रेशमी अँधेरा ओढे
सुगन्ध बिखेरती सन्दली देह
छूते ही देह
नस-नस मे
तनतनाता है
पानी
लगता है
मैं
मैं नहीं
हिनहिनाता घोडा हूँ !

चाकू की नोक पर

वैसे उसके बसन्त को
बसन्त कहना गलत होगा
क्योंकि
उसने न तो
हरे-भरे गदराये वृक्ष देखे
    न फल चखे
    न सूँघे फूल
न चिड़िया चहचहायीं
न फूटी कोई गन्ध ही वहाँ

लेकिन *श्रीमान* !
वर्ष की एक खास ऋतु का नाम
        बँसत है
अत: हे सभ्यजनो !
(आपके लिए यह सम्बोधन मेरा है, उसका नहीं)
बसन्त की बीस खाइयाँ फाँदकर
इस बाग को
ठहरिए
इस बाग की जगह
जगल कहना अधिक उपयुक्त होगा
(वह तो जगल ही कहता है इसे)
हाँ तो इस जंगल को

समझने लायक हुआ है
    जब से वह
तब से
वह हर बात का फैसला
चाकू की नोक पर चाहता है !

उस दुनिया की सैर के बाद

जानता हूँ उन्हें अच्छी तरह
कल नहीं थे वे ऐसे
हो गए हैं जैसे आज

वे रगों की व्याख्याएँ
और शब्दों की सीमाएँ
    जानते थे
काले और हरे रग का अर्थ
एक ही नहीं मानते थे !

एक ही वर्ण से शुरू होने वाले
अनेक शब्द उन्हें याद थे
क से शुरू करते
कविता-कहानी-कथोपकथन
क की कैंची से
कतर-बैंत करते कच्ची-पक्की बात
क की कचहरी में ला खडी करते
कच्ची कली
या कचनार
कच्ची बस्ती, कहवाघर, कहकशा
कमल-नयनी कंचन-कामिनी के कुच
क से बताया करते थे

पता नहीं क्या कुछ !
(कमीना/कमजात/कमजर्फ भी)
क से ही किया करते थे
पर्दाफाश
सफेदपोशों की काली करतूतों का !

लेकिन
जब से वे लौटे हैं
'उस दुनिया' की सैर करके
पता नहीं क्या हो गया है उन्हें
कि उनकी बात सुनकर
बात पूछने वाला रोता है
जब वे कहते हैं -
क से सिर्फ क होता है !





सावर दइया

- 10 अक्टूबर 1948 जन्म , 30 जुलाई 1992 निधन
- एम . ए . (हिन्दी), बी . ए . ; राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से।
- गुजराती में डिप्लोमा ; पश्चिम क्षेत्रीय भाषा संस्थान, डेकन कॉलेज, पूना से।
- शिक्षा विभाग राजस्थान में अध्यापक, व्याख्याता, प्रधानाध्यापक के रूप मे पन्द्रह स्कूलों में कार्य।
- तृतीय श्रेणी अध्यापक से राजपत्रित अधिकारी के पद तक पदोन्नति, चयन समिति द्वारा हर बार चयनित, हर बार अव्वल।
- जीवन के अन्तिम वर्षों मे शिक्षा निदेशालय, प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा राजस्थान, बीकानेर के प्रकाशन अनुभाग मे उप जिला शिक्षा अधिकारी के पद पर तथा विभाग द्वारा प्रकाशित शिविरा पत्रिका (मासिक) और नया शिक्षक (त्रैमासिक) के संपादन मंडल मे कार्यरत।
- अनुवादक के रूप में अनेकानेक महत्वपूर्ण गुजराती रचनाओं का हिन्दी और राजस्थानी में अनुवाद-प्रकाशन।
- सौ से अधिक संग्रहों में रचनाएं सहभागी रचनाकार के रूप मे सकलित।
- जीवन काल मे बारह किताबें छपी व पुरस्कृत भी हुई।
- कविता संग्रह : मनगत / काल अर आज रै बिच्चै / दर्द के दस्तावेज / आखर री औकात / आखर री आँख सूं / एक फूल गुलाब का / हुवै रंग हजार / आ सदी मिजळी मरै (प्रकाशनाधीन)।
- कहानी संग्रह : असवाडै-पसवाडै / धरती कद तांई घूमैली / अेक दुनिया म्हारी / अेक ही जिल्द में / उकरास (सपादन) / पोथी जिसी पोथी (प्रकाशनाधीन)।
- व्यंग्य सग्रह : आडी तिरछी ओळयां/आघा आगै नाच (प्रकाशनाधीन)।
- राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर ; मारवाड़ी सम्मेलन, बम्बई ; राजस्थानी ग्रेजुएट्स नेशनल एसोसियेशन सर्विस, बम्बई ; राजस्थानी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, बीकानेर और 'अेक दुनिया म्हारी' के लिए केन्द्रीय साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली द्वारा 1985 का सर्वोच्च पुरस्कार सर्वोच्च पुरस्कार से पुरस्कृत-सम्मानित।
- विश्वविद्यालयों द्वारा रचनाओं पर शोध-कार्य।
- अनेक रचनाओं के तेलगु, मराठी, अंग्रेजी आदि भाषाओं मे अनुवाद।
- हिन्दी और राजस्थानी में तीस किताबें अब भी अप्रकाशित।

रचनाओं के लिए सम्पर्क सूत्र : नीरज दइया, 3 च 14, पवनपुरी, बीकानेर (राज .)।